

एस.सी.चन्द्रा और अन्य

बनाम

झारखण्ड राज्य और अन्य

21 अगस्त, 2007

(न्यायाधिपति ए.के. माथुर एवं मार्कण्डेय काटजू)

बिहार गैर-सरकारी माध्यमिक विधालय (प्रबंधन और नियंत्रण का अधिग्रहण) अधिनियम, 1981-एस.एस 2(डी)3 और 19

प्रोपराईटरी विधालय- एच सी एल, एक सरकारी उधम इसे वित्तीय सहायता दे रहा था- वित्तीय कठिनाईयो के कारण, एच सी एल ने वित्तीय सहायता बंद कर दी-विधालय मे कार्यरत शिक्षकों और कर्मचारियो को वेतन नही मिला- उन्होने उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर की और एच.सी.एल. के प्रबंधन के खिलाफ परमादेश की मांग की। निर्धारित किया गया- वित्तीय सहायता देने का मतलब यह नहीं है कि विधालय में कार्यरत सभी शिक्षक और कर्मचारी एच.सी.एल के कर्मचारी बन गये- विधालय एच.सी.एल. के प्रबंधन द्वारा नहीं चलाया जाता था जो केवल वित्त उपलब्ध करवाता था- इसलिये परमादेश की रिट विधालय के शिक्षकों और कर्मचारियों को राहत प्रदान करने के लिये एच.सी.एल. के प्रबंधन के विरुद्ध

जारी नहीं की जा सकती- विधालय का प्रबंधन अपने हाथ में लेने के लिये राज्य सरकार को परमादेश जारी करने की वैकल्पिक याचिका भी मान्य नहीं है क्योंकि विधालय की प्रबंध समिति की ओर से ऐसा कोई अनुरोध नहीं किया गया था- भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 226- सेवा कानून- नियोक्ता-कर्मचारी संबंध।

प्रोपराईटरी विधालय-प्रतिवादी कम्पनी (बी.सी.सी.एल.) इसे वित्त उपलब्ध करा रही है- विधालय के शिक्षक प्रतिवादी कम्पनी में कार्यरत कर्मचारी के साथ वेतन समानता की मांग कर रही है- निर्धारित किया गया- प्रतिवादी-कम्पनी केवल वित्तीय सहायता प्रदान कर रही थी- विधालय अनिवार्य रूप से एक स्वतंत्र निकाय द्वारा प्रबंधित किया जाता था- इसलिये, प्रतिवादी- कम्पनी पर शिक्षको को प्रतिवादी-कंपनी में काम करने वाले क्लर्कों के बराबर वेतन देने की जिम्मेदारी नहीं दी जा सकती है- समान काम के लिए समान वेतन का सिद्धान्त लागू नहीं होता है क्योंकि दो समूह अर्थात् प्रतिवादी-कंपनी में शिक्षक और क्लर्क एक जैसे नहीं हैं- वेतन समानता का कोई सवाल ही नहीं है, विशेष तौर पर तब जब शिक्षक प्रतिवादी-कंपनी के कर्मचारी नहीं हैं- भारत का संविधान, 1950 अनुच्छेद 39(डी) - सेवा कानून समान कार्य के लिए समान वेतन

एच.सी.एल, एक सरकारी उधम, बिहार गैर सरकारी व माध्यमिक विधालय ;प्रबंधन और नियंत्रण का अधिग्रहण अधिनियम 1961 की धारा

2(डी) में परिभाषित प्रोपराइटरी विधालय को वित्तीय सहायता प्रदान करता था। एच.सी.एल के अधिकांश कर्मचारी उक्त विधालय की प्रबंध समिति में थे। हालांकि, एच.सी.एल का प्रबंधन वित्तीय तनाव के कारण बंद हो गया, जिसके परिणामस्वरूप विधालय को कोई वित्तीय सहायता नहीं दी जा सकी और शिक्षकों के साथ-साथ विधालय के गैर शिक्षक कर्मचारियों को भी उसका वेतन नहीं मिल सका। उन्होंने राहत की मांग करते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर की। याचिका खारिज कर दी गई।

इस न्यायालय में अपील में विचार के लिए जो प्रश्न उठे वो हैं। 1. क्या विधालय का प्रबंधन एच.सी.एल. की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी थी और इसके खिलाफ परमादेश की रिट जारी की जा सकती थी और 2. क्या, यदि संविधान एच.सी.एल. प्रबंधन का हिस्सा नहीं है, तब विधालय के प्रबंधन को हाथ में लेने के लिए 1881 के अधिनियम के अधीन राज्य सरकार को दिशानिर्देश दिया जा सकता है।

अपीलो के सम्बंधित समूह में, एक प्रोपराइटरी विधालय के शिक्षकों ने भारत कोकिंग कोल लिमिटेड (बीसीसीएल) के क्लर्कों के साथ वेतन समानता की मांग की, जो समय-समय पर विधालय को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए उपयोग करता था। इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए यह प्रश्न उठा कि क्या वेतन समानता का दावा तर्कसंगत है।

न्यायालय द्वारा सभी अपीलो को खारिज करते हुए अभिनिर्धारित किया

गया :-

(जस्टिस ए.के. माथुर)

1.1 हालांकि विभिन्न संचारों के माध्यम से यह धारणा देने की कोशिश की गई थी कि विधालय एच.सी.एल. द्वारा चलाया जा रहा है, लेकिन वास्तव में एच.सी.एल. केवल विधालय को वित्तीय सहायता प्रदान करता था और विधालय का प्रबंधन एच.सी.एल. के प्रबंधन से पूरी तरह से अलग था। वित्तीय सहायता का मतलब यह नहीं है कि विधालय में काम करने वाले सभी शिक्षक और कर्मचारी एच.सी.एल. के कर्मचारी बन गये हैं इसलिये विधालय के प्रबंधन के साथ एच.सी.एल. के प्रबंधन का कोई संबंध नहीं था, हालांकि अधिकांश कर्मचारी एच.सी.एल. विधालय की प्रबंध संमिति में थे लेकिन इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विधालय की स्थापना एच.सी.एल. द्वारा की गई थी, इस विधालय द्वारा दी जाने वाली शिक्षा से एच.सी.एल. के श्रमिकों के बच्चे लाभान्वित हो रहे थे, इसलिये एच.सी.एल. प्रबंधन वित्तीय सहायता तो दे रहा था लेकिन इससे एच.सी.एल. प्रबंधन को नुकसान नहीं हो सकता।

(पैरा 05)(136-ई, एफ जी)

1.2 जहां तक प्रोपराईटरी विधालय को अपने कब्जे में लेने के लिये राज्य सरकार को परमादेश जारी करने का सवाल है, इसे जारी नहीं किया जा सकता क्योंकि प्रोपराईटरी विधालय जैसा कि बिहार गैर सरकारी

माध्यमिक विधालय (प्रबंधन और नियंत्रण का अधिग्रहण) अधिनियम 1981 की धारा 19 सपठित धारा 2(डी) के तहत परिभाषित झारखण्ड राज्य से अनुरोध करना होगा कि वे सभी वित्तीय जिम्मेदारियां वहन करेंगे। यदि प्रबंध समिति झारखण्ड राज्य से इस आशय का अनुरोध करती है, तो सरकार विचार कर सकती है, लेकिन वर्तमान में प्रबंध समिति की ओर से ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं है और ऐसे में झारखण्ड राज्य को प्रोपराइटरी स्कूल को देने के लिए कोई निर्देश नहीं दिया जा सकता है। प्रोपराइटरी विधालय के प्रबंधन की वित्तीय जिम्मेदारी लेने के लिए कोई तैयार नहीं है।

(पैरा 06)(138-ए, बी)

2.1 जहां तक अन्य प्रोपराइटरी विधालय का सवाल है, सर्वप्रथम, इसका प्रबंधन बीसीसीएल द्वारा नहीं किया जा रहा है, क्योंकि तथ्यों से यह स्पष्ट है कि बीसीसीएल केवल समय-समय पर वित्तीय सहायता प्रदान कर रहा था। इसके द्वारा बीसीसीएल को विधालय के शिक्षको और झारखण्ड सरकार में काम करने वाले क्लर्कों को भुगतान करने के दायित्व के साथ नहीं जोड़ा जा सकता है। विधालय का प्रबंधन अनिवार्य रूप से बीसीसीएल के प्रबंधन से स्वतन्त्र एक निकाय द्वारा दिया जाता है।

(पैरा 11)(140 ए,बी)

2.2 समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धान्त को लागू करने के लिए, दोनों समूहों के बीच सम्पूर्ण एकरूपता होनी चाहिए यानि एक तरफ

विधालय के शिक्षक और दूसरी तरफ बीसीसीएल मे क्लर्क और इस तरह शिक्षकों को राज्य सरकार या बीसीसीएल के क्लर्कों के साथ बराबर नहीं किया जा सकता है। विशेषतः जब शिक्षक बीसीसीएल के कर्मचारी नहीं है, तो बीसीसीएल के क्लर्कों के साथ समान वेतन की समानता की मांग करने का कोई सवाल ही नहीं है।

(पैरा 12) (140 सी एफ)

हरियाणा राज्य और राज्य अन्य बनाम चरणजीत सिंह व अन्य (2006)9 एस सी सी 321 पर भरोसा जताया।

अभिनिर्धारित किया गया [जस्टिस (अनुपूरक) मार्कडेंय काटजू]

1.1 वेतनमान का निर्धारण एक नाजूक तंत्र है जिसके लिये वितीय क्षमता, जिम्मेदारी, शैक्षणिक योग्यता, नियुक्ति का तरीका आदि सहित विभिन्न विचारों की आवश्यकता होती है और इसका व्यापक प्रभाव पड़ता है। समान कार्य के लिये समान वेतन के सिद्धांत को लागू करके न्यायालयों द्वारा वेतनमान तय करना, शक्तियों के पृथक्करण के उच्च संवैधानिक सिद्धांत को उलट देता है। राज्य के तीन अंग इस बात को इस न्यायालय ने हाल के वर्षों में महसूस किया है। समान कार्य के लिये समान वेतन के सिद्धांत को लागू करने से बचाव किया जब तक कि दोनों समूहों के बीच पूर्ण एकरूपता न हो; मामले को न्यायालय द्वारा स्वयं उच्च वेतन देने के बजाय सरकार द्वारा नियुक्त एक विशेषज्ञ समिति द्वारा जांच के लिये भेजा

जाना चाहिये माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया है कि केवल इसलिये कि कार्य की प्रकृति समान है चाहे शैक्षणिक योग्यता या नियुक्ति का तरीका कुछ भी हो, अनुभव व अन्य प्रासंगिक कारकों के बावजूद समान कार्य के लिये समान वेतन का सिद्धांत लागू नहीं हो सकता।

(पैरा 4, 13 और 14) (141 डी, 145 डी, ई, एफ)

1.2 वेतनमान देना पूरी तरह से कार्यकारी कार्य है और इसलिये न्यायालय को इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। इसका व्यापक प्रभाव हो सकता है। जिससे सरकार और अधिकारियों के लिये सभी प्रकार की समस्याएं पैदा हो सकती हैं। इसलिये न्यायालय को न्यायिक संयम बरतना चाहिये और कार्यकारी कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये।

(पैरा 11)(143 ई)

हरियाणा राज्य बनाम तिलक राज (2003)6 एस.सी.सी. 123, हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम चरणजीत सिंह एवं अन्य (2006)9 एस सी सी 321, उत्तरप्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम अनुसचिवीय कर्मचारी संघ, एआईऔर (1998)एससी 303, हरियाणा राज्य बनाम जसमेर सिंह और अन्य, एआईऔर (1997) एससी 1788 अखिल भारतीय सीमा शुल्क और उत्पाद शुल्क आशुलिपिक संघ (मान्यता) एवं अन्य बनाम भारत संघ व अन्य एआईऔर(1988)एससी 1291, भारतीय ड्रग्स और फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड और वर्कमैन इंडियन ड्रग्स एण्ड फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड

(2007)1 एससीसी 408, आसिफ हामिद बनाम जम्मू कश्मीर राज्य एआईऔर(1989) एससी 1899, पश्चिम बंगाल सरकार बनाम तरूण के राँय एवं अन्य (2004)1 एससीसी 347, हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम हरियाणा सिविल सैक्रेटेरियेट पर्सनल स्टाफ एसोसिएशन(2002)6 एससीसी 72 और भारत संघ एवं अन्य बनाम प्रदीप कुमार देय (2000)8 एससीसी 580, पर विश्वास जताया ।

धीरेन्द्र कामोली एवं अन्य बनाम उत्तरप्रदेश राज्य (1986)1 एससीसी 637, सुरेन्द्र सिंह बनाम इंजीनीयर इन चीफ, सी पी डब्ल्यू डी (1986)1 एससीसी 639 और रणधीर सिंह बनाम भारत संघ (1982)1 एससीसी 618 इत्यादि का संदर्भ दिया।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार सिविल अपील की सं. 15321/2005। झारखण्ड उच्च न्यायालय, बेंच राची के रिट याचिका (एस) संख्या की 3666/2001 में पारित अंतिम निर्णय और आदेश दिनांक 04.03.2004 से उत्पन्न।

सहित

सी.पी. 2005 की संख्या 6595, 6601, 6602- 6603

सुनील कुमार, श्री प्रकाश सिन्हा, अभिषेक सिंह, अशुमन कुमार, एस. चन्द्रशेखर, बृज के. मिश्रा, उज्जवल के झा, अर्पणा झा, विक्रम अभिषेक यादव, एम. पी. झा, राम इरबल राय, हर्षवर्धन झा और अनिल के चोपड़ा

- वास्ते अपीलार्थीगण

मनीष कुमार शरण, देवा प्रसाद मुखर्जी, नन्दिनी सैन, सुषभा सुरी,
श्रीकांत एन. टरडल, अजीत कुमार सिन्हा, मोहित शाह, गोपाल सिंह,
रितुराज विश्वास, और अनुकुल- वास्ते प्रत्यर्थीगण

न्यायाधीश ए. के. माथुर द्वारा न्यायालय के निर्णय पारित किए गए

1. यह अपील छत्रधर महतो और अन्य बनाम झारखण्ड राज्य व
अन्य में झारखण्ड उच्च न्यायालय, रांची के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा
2001 की रिट याचिका संख्या 3666 में पारित आदेश दिनांक
04.03.2004 के खिलाफ निर्देशित है जिसके तहत विद्वान एकल
न्यायाधीश ने डिवीजन बेंच द्वारा दिये गये निर्णय के बाद रिट याचिका को
खारिज कर दिया।

2. संक्षिप्त तथ्य जो इस अपील के निपटान के लिए आवश्यक हैं, वह
यह है कि रिट याचिकाकर्ताओं-अपीलकर्ता ने झारखंड उच्च न्यायालय में
एक रिट याचिका दायर की, जिसमें प्रतिवादी संख्या 3 से 6 के खिलाफ
डीए का संदाय करने और ब्याज के साथ बकाया का भुगतान करने के लिए
परमादेश की रिट की मांग की गई और इसके अलावा प्रतिवादी संख्या 3
से 6 को स्कूल बंद न करने के लिए एक निर्देश जारी करने की मांग की
गई थी या वैकल्पिक रूप से प्रतिवादी संख्या 1 और 2 को प्रश्नगत स्कूल
का प्रबंधन और नियंत्रण अपने हाथ में लेने के लिए एक निर्देश जारी करने

की मांग की गई थी। सभी रिट याचिकाकर्ताओं ने खुद को स्कूल के शिक्षक और गैर-शिक्षण कर्मचारी होने का दावा किया और खुद को हिंदुस्तान कॉपर लिमिटेड (बाद में 'एचसीएल' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) का कर्मचारी होने का दावा किया। यह आरोप लगाया गया था कि वर्ष 1933 में यूनाइटेड किंगडम में पंजीकृत एक निजी क्षेत्र की इकाई इंडियन कॉपर कॉर्पोरेशन ने अपने कर्मचारियों के बच्चों के लिए मौभेंडर में एक लोअर प्राइमरी स्कूल शुरू किया था, जिसे मौभेंडर लोअर प्राइमरी स्कूल का नाम दिया गया था। वर्ष 1944-45 में स्कूल को उच्च प्राथमिक विद्यालय यानी कक्षा v तक अपग्रेड किया गया था। 1958-59 में स्कूल को मिडिल स्कूल में अपग्रेड किया गया था और तत्कालीन जिला शिक्षा अधीक्षक, चाईबासा द्वारा मिडिल स्कूल की मान्यता प्रदान की गई थी। इसके बाद 21.9.1972 को भारतीय तांबा निगम (उपक्रम का अधिग्रहण) अधिनियम 1972 को अधिसूचित किया गया और भारतीय तांबा निगम को केंद्र सरकार ने अपने कब्जे में ले लिया और यह भारत सरकार के उद्यम एचसीएल का हिस्सा बन गया। यह आरोप लगाया गया कि इसके बाद स्कूल को राज्य सरकार द्वारा अपने कब्जे में लेने की मांग की गई, लेकिन स्कूल की प्रबंध समिति ने इसका विरोध किया। यह आरोप लगाया गया था कि एचसीएल का प्रबंधन दो स्कूल चला रहा था, एक मोसाबनी में और दूसरा मऊभंडेर में मालिकाना स्कूल के रूप में और उनका प्रबंधन प्रबंध समिति द्वारा किया जाता था। वर्तमान विद्यालय को एचसीएल प्रबंधन से वित्तीय सहायता मिल

रही थी। बिहार गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालय (प्रबंधन और नियंत्रण का अधिग्रहण) अधिनियम 1981 इसके बाद इसे 'अधिनियम' के रूप में जाना जाएगा) पारित किया गया। धारा 19 अधिनियम में प्रबंध समिति के माध्यम से चलने वाले ऐसे स्वामित्व वाले स्कूलों को मान्यता देने के लिए कुछ शर्तें निर्धारित की गई हैं और इसलिए, यह तर्क दिया गया कि स्कूल प्रबंध समिति द्वारा चलाया जाता था और स्कूल के कर्मचारियों की सेवा शर्तों को कार्यकारी निदेशक द्वारा अनुमोदित किया गया था। और उसके बाद एचसीएल द्वारा हाई स्कूल के रूप में मान्यता प्रदान करने के लिए शिक्षा आयोग से अनुरोध किया गया था। स्कूल को राज्य सरकार द्वारा 1981 के अधिनियम के प्रावधानों के तहत मान्यता दी गई थी। यह आरोप लगाया गया था कि स्कूल की प्रबंध समिति का गठन और पुनर्गठन एचसीएल के प्रबंधन द्वारा किया गया था। इसके बाद उक्त स्कूल में 10+2 स्ट्रीम शुरू की गई और स्कूल के अध्यक्ष द्वारा निदेशक, बिहार माध्यमिक शिक्षा को एक अनुरोध किया गया, जिसमें आईसीसी हाई स्कूल, मऊभंडेर को +2 चरण में अपग्रेड करने की अनुमति मांगी गई और इसे बिहार सरकार द्वारा भी मान्यता दी गई। हालाँकि, इस बीच गंभीर वित्तीय स्थिति के कारण स्कूल की प्रबंध समिति ने एचसीएल प्रबंधन से अनुरोध किया कि वह जल्द से जल्द स्कूल का अधिग्रहण करने के लिए राज्य सरकार से संपर्क करें। नवगठित राज्य झारखंड द्वारा 1981 के अधिनियम के तहत स्कूल का अधिग्रहण नहीं किया गया था। चूंकि एचसीएल का प्रबंधन

वित्तीय तनाव के कारण बंद था, इसलिए स्कूल को कोई वित्तीय सहायता नहीं दी जा सकी और रिट याचिकाकर्ताओं को उनका वेतन नहीं मिल सका क्योंकि वित्तीय सहायता एचसीएल के प्रबंधन से नहीं आ रही थी और इसलिए, वे प्रतिवादी संख्या 3 से 6 के खिलाफ महंगाई भत्ते के साथ वेतन और बकाया जारी करने के लिए परमादेश की रिट जारी करने के लिए झारखंड उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया और उन्होंने स्कूल को बंद न करने के लिए एक और निर्देश भी मांगा और विकल्प में प्रतिवादी संख्या 1 व 2 के खिलाफ स्कूल का प्रबंधन अपने हाथ में लेने के लिए भी एक निर्देश जारी करने की मांग की गई।

3. एचसीएल प्रबंधन की ओर से जवाब दाखिल किया गया। उन्होंने यह रुख अपनाया कि एचसीएल और स्कूल के प्रबंधन के बीच नियोक्ता और कर्मचारी का कोई संबंध नहीं है और यह कहा गया कि कंपनी केवल शिक्षा प्रदान करने के लिए अनुदान प्रदान कर रही थी और स्कूल प्रबंध समिति द्वारा चलाया जाता था। यह भी तर्क दिया गया कि स्कूल एचसीएल के प्रबंधन का दायित्व नहीं था। स्कूल का प्रबंधन प्रबंध समिति द्वारा किया जा रहा था और एचसीएल प्रबंधन द्वारा समय-समय पर केवल वित्तीय सहायता प्रदान की जाती थी, लेकिन चूंकि एचसीएल प्रबंधन वित्तीय संकट में था, इसलिए वह स्कूल का प्रबंधन करने में असमर्थ था। हालाँकि, यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि एचसीएल के प्रबंधन और स्कूल के कर्मचारियों के बीच नियोक्ता और कर्मचारी का कोई संबंध नहीं था।

4. मामले में कई याचिकाओं पर विचार करने के बाद विद्वान एकल न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि स्कूल एचसीएल का प्रमुख उद्देश्य नहीं था और यह पाया गया कि एचसीएल के प्रबंधन और (विद्यालय के) शिक्षकों व अन्य कर्मचारियों के बीच नियोक्ता और कर्मचारी का कोई संबंध नहीं था। इसलिए, कोई निर्देश नहीं दिया गया और छत्रधर महतो और अन्य बनाम झारखंड राज्य और अन्य के मामले में पूर्वोक्त फैसले पर भरोसा करते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट याचिका खारिज कर दी गई। इसलिए रिट याचिकाकर्ता-अपीलकर्ताओं ने विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश दिनांक 4.3.2004 के खिलाफ विशेष अनुमति याचिका दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया।

5. हमने पक्षकारों के विद्वान वकीलों को सुना है और अभिलेखों का अवलोकन किया है। हमारे सामने मूल प्रश्न यह है कि क्या एचसीएल प्रबंधन के खिलाफ परमादेश जारी किया जा सकता है। भारत कोकिंग कोल लिमिटेड से संबंधित एक समान मामले में डिवीजन बेंच पर भरोसा करते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपीलकर्ताओं की रिट याचिका खारिज कर दी। इस मुद्दे की जांच एक समरूप रिट याचिका में की गई थी और उपरोक्त मामले में, इस मुद्दे पर व्यापक रूप से विचार किया गया था कि क्या स्कूल का प्रबंधन एचसीएल की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी है या नहीं। मामले पर विस्तार से विचार करने के बाद, विद्वान एकल न्यायाधीश ने उपरोक्त फैसले पर भरोसा करते हुए पाया कि एचसीएल के साथ स्कूल के शिक्षकों और

अन्य कर्मचारियों के साथ मालिक और नौकर का कोई संबंध नहीं है क्योंकि स्कूल का प्रबंधन प्रबंधक द्वारा किया जाता था। निगम द्वारा उदार वित्तीय अनुदान के माध्यम से समिति का निर्माण किया जा रहा था। इससे एचसीएल प्रबंधन का स्कूल प्रबंधन से कोई सीधा संबंध नहीं था हालाँकि विभिन्न संचार के माध्यम से यह धारणा देने की कोशिश की गई थी कि स्कूल एचसीएल द्वारा चलाया जा रहा है, लेकिन वास्तव में एचसीएल केवल स्कूल को वित्तीय सहायता प्रदान करता था लेकिन स्कूल का प्रबंधन एचसीएल के प्रबंधन से पूरी तरह से अलग था। वित्तीय सहायता देने का मतलब यह नहीं है कि स्कूल में काम करने वाले सभी शिक्षक और कर्मचारी एचसीएल के कर्मचारी बन गए हैं। इसलिए हमारा विचार है कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लिया गया दृष्टिकोण सही प्रतीत होता है कि एचसीएल के प्रबंधन का स्कूल के प्रबंधन के साथ कोई संबंध नहीं था, हालाँकि एचसीएल के अधिकांश कर्मचारी विद्यालय की प्रबंधन समिति में थे, लेकिन इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि स्कूल की स्थापना एचसीएल द्वारा की गयी थी। इस विद्यालय द्वारा दी जाने वाली शिक्षा से एचसीएल के श्रमिकों के बच्चे लाभान्वित हो रहे थे। इसलिए एचसीएल प्रबंधन और्थिक सहायता तो दे रहा था, लेकिन इससे यह नहीं माना जा सकता कि स्कूल एचसीएल प्रबंधन द्वारा चलाया जा रहा था। इसलिए इन परिस्थितियों में, हमारी राय है कि विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लिया गया दृष्टिकोण सही प्रतीत होता है।

6. इसके बाद यह तर्क दिया गया कि भले ही स्कूल एचसीएल के प्रबंधन का हिस्सा नहीं है, फिर भी स्कूल के प्रबंधन को संभालने के लिए 1981 के अधिनियम के तहत झारखंड राज्य को निर्देश दिया जा सकता है। इस संबंध में हमारा ध्यान अधिनियम की धारा 2(डी) में परिभाषित मालिकाना स्कूल की परिभाषा की ओर आकर्षित किया गया था, जो इस प्रकार है:

"(डी) मालिकाना माध्यमिक विद्यालय का अर्थ है ऐसा माध्यमिक विद्यालय जिसका संपूर्ण वित्तीय दायित्व (किसी पंजीकृत ट्रस्ट, एसोसिएशन या कॉर्पोरेट निकाय, व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूह) द्वारा वहन किया जाता है और जो समय-समय पर निर्धारित शर्तों और पंजीकरणों के अनुसार होता है समय-समय पर राज्य सरकार द्वारा इसे स्वामित्व माध्यमिक विद्यालय घोषित किया जा सकता है।"

धारा 3 में गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों का नियंत्रण और प्रबंधन राज्य सरकार द्वारा अपने हाथ में लेने का प्रावधान है। धारा 19 में कहा गया है कि प्रोपराईटरी माध्यमिक विद्यालय स्थापित किया जा सकता है। धारा 19 केवल यह कहती है कि यदि कोई पंजीकृत ट्रस्ट (एसोसिएशन, कॉर्पोरेट निकाय, व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह) एक माध्यमिक विद्यालय की स्थापना के लिए आवेदन करता है और स्कूल के पूरे वित्तीय बोझ को वहन करने का लिखित वादा करता है, तो राज्य सरकार के पास यह शक्ति होगी

कि धारा 19 के तहत मान्यता के लिए निर्धारित शर्तों को पूरा करने के बाद ऐसे स्कूल की स्थापना की अनुमति दें। इसका मतलब यह नहीं है कि स्कूल का प्रबंधन अपने हाथ में लेने के लिए राज्य सरकार को परमादेश जारी किया जा सकता है। प्रोपराईटरी माध्यमिक विद्यालय को अधिनियम की धारा 2(डी) के तहत परिभाषित किया गया है। राज्य सरकार कुछ शर्तों को पूरा करने पर अधिनियम की धारा 19 के तहत किसी विशेष स्कूल को प्रोपराईटरी माध्यमिक विद्यालय घोषित कर सकती है लेकिन मूल बात यह है कि पूरे वित्त का बोझ ट्रस्ट, एसोसिएशन, कॉर्पोरेट निकाय, व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को देना होगा, इससे विद्यालय के कर्मचारी राज्य सरकार के कर्मचारी नहीं होंगे। झारखंड राज्य की ओर से श्री राजेंद्र नाथ त्रिपाठी, क्षेत्रीय शिक्षा उप निदेशक, दक्षिण छोटा नागपुर डिवीजन, रांची के शपथपत्र द्वारा समर्थित एक जवाबी शपथपत्र दायर किया गया था और जवाबी शपथपत्र के पैराग्राफ 12 में यह बताया गया था कि संवैधानिक आदेश को पूरा करते हुए कि 6-14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा दी जाएगी, झारखंड सरकार ने सहमति दे दी है और संबंधित अधिकारियों को इस स्कूल के छात्रों को लेने और उन्हें राज्य समिति द्वारा प्रबंधित स्कूलों या में प्रवेश देने का निर्देश दिया है। उसी क्षेत्र के अन्य सरकारी स्कूलों में समकक्ष कक्षाओं में जहां वे पढ़ रहे थे। दिनांक 15.3.2003 के पत्र की प्रति अनुबंध-और-1 के रूप में संलग्न की गई है। इसलिए झारखंड सरकार ने संवैधानिक आदेश को पूरा करने के लिए इन

छात्रों को विभिन्न स्कूलों में प्रवेश दिलाया है। इसलिए विद्यार्थियों की पढ़ाई प्रभावित नहीं हुई है, जहां तक प्रोपराईटरी स्कूल को अपने कब्जे में लेने के लिए राज्य सरकार को परमादेश जारी करने का सवाल है, वह जारी नहीं किया जा सकता क्योंकि धारा 2(डी) के तहत परिभाषित प्रोपराईटरी स्कूल धारा 19 के साथ पढ़ा जाता है। अधिनियम के तहत झारखंड राज्य से अनुरोध करना होगा कि वे सभी वित्तीय जिम्मेदारियां वहन करेंगे। यदि प्रबंध समिति झारखंड राज्य से इस आशय का अनुरोध करती है, तो सरकार विचार कर सकती है, लेकिन वर्तमान में प्रबंध समिति की ओर से ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं है और ऐसे में झारखंड राज्य को मान्यता देने के लिए कोई निर्देश नहीं दिया जा सकता है। प्रोपराईटरी स्कूल क्योंकि स्कूल के प्रबंधन की वित्तीय जिम्मेदारी लेने के लिए कोई तैयार नहीं है। इसलिए, स्कूल का प्रबंधन अपने हाथ में लेने के लिए राज्य सरकार को कोई निर्देश जारी नहीं किया जा सकता।

7. मामले के इस दृष्टिकोण में हमारी राय है कि झारखंड उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लिया गया दृष्टिकोण सही प्रतीत होता है और आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं है। नतीजतन सिविल अपील कोस्ट के संबंध में बिना किसी आदेश के खारिज कर दी जाती है।

सी.ए.नंबर 6595, सी.ए.नंबर 6602-6603 और सी.ए.नंबर 2005 का

8. इन सभी अपीलों में कानून का सामान्य प्रश्न शामिल है, इसलिए उनका निपटारा इस सामान्य निर्णय द्वारा किया जाता है। इन अपीलों के सुविधाजनक निपटान के लिए 2005 के सी.ए. नंबर 6595 में बताए गए तथ्यों को ध्यान में रखा गया है।

9. रिट याचिकाकर्ता-अपीलकर्ताओं ने रिट याचिका दायर करके झारखंड उच्च न्यायालय के समक्ष प्रार्थना की कि उत्तरदाताओं को सरकारी माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के वेतनमान के बराबर या प्रतिवादी कम्पनी के ग्रेड प्रथम व द्वितीय लिपिक के बराबर वेतनमान तय करने के लिए निर्देश और आदेश दिया जाए। उन्होंने यह भी प्रार्थना की कि भविष्य निधि ग्रेच्युटी, पेंशन और अन्य पुनः परीक्षण लाभ जैसी सुविधाएं भी उन्हें उपलब्ध कराई जाएं और यह भी प्रार्थना की गई कि राज्य सरकार को बिहार के प्रावधानों के तहत राम कनाली स्कूल का प्रबंधन अपने हाथ में लेना चाहिए। गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालय (प्रबंधन और नियंत्रण का अधिग्रहण) अधिनियम 1981 (इसके बाद इसे "अधिनियम" के रूप में संदर्भित किया जाएगा) भारत कोकिंग कोल लिमिटेड (बाद में इसे बीसीसीएल के रूप में संदर्भित किया जाएगा) द्वारा एक जवाबी बीसीसीएल दायर किया गया था कि वर्तमान राम कनाली स्कूल उक्त बीसीसीएल के स्वामित्व में नहीं था और स्कूल प्रबंध समिति द्वारा चलाया जाता था और

रिट याचिकाकर्ताओं को कभी भी द्वारा नियुक्त नहीं किया गया था, इसलिए वे बीसीसीएल के कर्मचारी नहीं थे। यह भी प्रस्तुत किया गया कि बीसीसीएल कल्याण समिति की सिफारिश पर निजी तौर पर प्रबंधित स्कूलों को गैर-आवर्ती अनुदान जारी करता था। लेकिन यह अनुदान जारी करना कुछ शर्तों के अधीन था। यह गैर-आवर्ती अनुदान-सहायता स्कूल को बीसीसीएल के प्रबंधन का हिस्सा नहीं बनाती है और इसलिए ऐसे निजी तौर पर प्रबंधित स्कूल के किसी भी शिक्षक को बीसीसीएल का कर्मचारी नहीं कहा जा सकता है जिससे वह नियमित रूप से उपलब्ध सभी लाभों का हकदार हो जाता है। बीसीसीएल के कर्मचारी यह भी बताया गया कि राम कलाई स्कूल की प्रबंध समिति को अनुदान सहायता दी गई थी लेकिन उसे रोक दिया गया है और उन्होंने किसी भी लाभ के लिए जिम्मेदारियों से पूरी तरह इनकार कर दिया है। हालाँकि विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को स्वीकार कर लिया और निर्देश दिया कि ये शिक्षक जो स्कूल में काम कर रहे थे भविष्य निधि जैसे सभी परिणामी लाभों के साथ फ़ैसले की तारीख से बीसीसीएल में काम करने वाले क्लर्कों को दिए जाने वाले वेतनमान साथ ही बीसीसीएल के कर्मचारियों को ग्रेच्युटी और अन्य सेवा लाभ उपलब्ध थे के हकदार थे। जहां तक झारखंड राज्य द्वारा स्कूल का अधिग्रहण करने का सवाल है विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा कोई निर्देश नहीं दिया गया था। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित इस आदेश से व्यथित होकर अपील तैयार की गई और इस अपील के साथ बीसीसीएल

द्वारा डिवीजन बेंच के समक्ष दो और अपीलें दायर की गईं। इसलिए इन तीनों अपीलों पर डिवीजन बेंच ने एक साथ विचार किया और इन्हें सामान्य आदेश द्वारा निपटाया गया। डिवीजन बेंच ने मामले की अधिक विस्तार से जांच की और इस निष्कर्ष पर पहुंची कि पदधारी बीसीसीएल के कर्मचारियों या सरकारी कर्मचारियों के समक्ष वेतनमान के हकदार नहीं थे और तदनुसार दिनांक 21.01.2004 के आदेश द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश को रद्द कर दिया। इसलिए इस आदेश के विरुद्ध व्यथित होकर ये तीनों अपीलें निजी उत्तरदाताओं द्वारा प्रस्तुत की गई हैं।

10. हमने पक्षकारों के विद्वान वकीलों को सुना है और अभिलेखों का अवलोकन किया है। मामले पर विचार करने के बाद खंडपीठ इस निष्कर्ष पर पहुंची कि उपलब्ध रिकॉर्ड से बीसीसीएल प्रबंधन और स्कूल में काम करने वाले शिक्षकों के बीच नियोक्ता और कर्मचारी के संबंध का अस्तित्व स्थापित नहीं किया जा सका। डिवीजन बेंच ने आगे कहा कि कंपनी अधिनियम की धारा 617 के अनुसार बीसीसीएल राज्य का एक साधन नहीं है क्योंकि इसका प्रमुख कार्य कोयला जुटाना और बेचना है और शिक्षा प्रदान करना इसका प्रमुख कार्य नहीं है। डिवीजन बेंच ने आगे कहा कि यह दलील कि स्कूल को अपने कब्जे में लेने के लिए अधिनियम के तहत राज्य सरकार को निर्देश जारी किया जा सकता है पूरी तरह से गलत है। इस प्रकार डिवीजन बेंच ने विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश को रद्द कर दिया और रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया।

11. डिवीजन बेंच के आदेश को पढ़ने के बाद हमारी राय है कि उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा लिया गया दृष्टिकोण सही है। सबसे पहले स्कूल का प्रबंधन बीसीसीएल द्वारा नहीं किया जा रहा है क्योंकि तथ्यों से यह स्पष्ट है कि बीसीसीएल केवल समय-समय पर वित्तीय सहायता प्रदान कर रहा था। इसके द्वारा स्कूल के इन शिक्षकों को बीसीसीएल या झारखंड सरकार में काम करने वाले क्लर्कों को भुगतान करने के दायित्व से नहीं जोड़ा जा सकता है। यह मूलतः बीसीसीएल के प्रबंधन से स्वतंत्र एक संस्था द्वारा प्रबंधित स्कूल है। इसलिए बीसीसीएल को शिक्षकों को बीसीसीएल में कार्यरत क्लर्कों के बराबर वेतन देने की जिम्मेदारी नहीं दी जा सकती।

12. अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने संविधान के अनुच्छेद 39(डी) पर भरोसा किया है अनुच्छेद 39(डी) का मतलब यह नहीं है कि स्कूल में कार्यरत सभी शिक्षकों को बीसीसीएल या झारखंड सरकार के क्लर्कों के बराबर किया जाना चाहिए। समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धांत को लागू करने हेतु, दोनों समूहों यानी एक तरफ स्कूल के शिक्षकों और बीसीसीएल में क्लर्कों के बीच पूर्ण एकरूपता होनी चाहिए और इस तरह शिक्षकों को राज्य सरकार या बीसीसीएल के क्लर्कों के साथ बराबर नहीं किया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 39(डी) के आवेदन के प्रश्न की व्याख्या हाल ही में इस न्यायालय द्वारा हरियाणा राज्य और अन्य बनाम चरणजीत सिंह और अन्य।(2006) 9 एससीसी 321 में की गई है। जिसमें उनके आधिपत्य ने पूरे विवाद को शांत कर दिया है और माना है कि

सिद्धांत "समान काम के लिए समान वेतन" को इस परीक्षण को पूरा करना चाहिए कि पदधारी समान और एकरूप कार्य कर रहे हैं जैसा कि उन कर्मचारियों द्वारा किया जाता है जिनके समान वेतन का दावा किया गया है उनके आधिपत्य ने इस विषय से संबंधित सभी मामलों की समीक्षा की है और एक विस्तृत चर्चा के बाद अंततः विवाद को शांत कर दिया है कि जिन व्यक्तियों ने समानता का दावा किया है उन्हें अदालत को संतुष्ट करना चाहिए कि स्थितियां समान और एकरूप हैं और उनके द्वारा समान कर्तव्यों का निर्वहन किया जा रहा है। हालाँकि हमारे विचार करने के लिए कई मामलों का हवाला दिया गया था लेकिन कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा क्योंकि चरणजीत सिंह (सुप्रा) में इन सभी मामलों की इस न्यायालय द्वारा समीक्षा की गई है। इससे भी अधिक जब हम पहले ही मान चुके हैं कि अपीलकर्ता बीसीसीएल के कर्मचारी नहीं हैं तो बीसीसीएल के क्लर्कों के वेतन के साथ किसी भी तरह की समानता की मांग करने का कोई सवाल ही नहीं है।

13. इसलिए हमारी उपरोक्त चर्चा के परिणामस्वरूप हमें इन अपीलों में कोई योग्यता नहीं मिली और इन्हें बिना किसी खर्च के संबंध में आदेश के खारिज कर दिया गया।

मार्कडेय काटजू, जे। 1. मामले के तथ्य मेरे विद्वान भाई माननीय ए.के.माथुरा जे. के फैसले में बताए गए हैं जिनका मैंने अवलोकन किया है।

मैं उनसे आदरपूर्वक सहमत हूँ कि ये अपीलें खारिज किए जाने योग्य हैं। हालाँकि, मैं एक अलग समवर्ती निर्णय लिख रहा हूँ क्योंकि मेरा विचार है कि समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धांत को स्पष्ट करने की आवश्यकता है।

2. समान कार्य के लिए समान वेतन का सिद्धांत इस न्यायालय द्वारा 1980 के दशक में कुछ निर्णयों में प्रतिपादित किया गया था जैसे धीरेंद्र चमोली और अन्य बनाम यूपी राज्य।(1986) 1 एससीसी 637 सुरिंदर सिंह बनाम इंजीनियर-इन-चीफ सी.पी.डब्ल्यूडी (1986)1एससीसी 639,रणधीर सिंह बनाम भारत संघ(1982)1एससीसी 618 आदि। यह संविधान के अनुच्छेद 14 और 39(डी) को लागू करके किया गया था। इस प्रकार धीरेंद्र चमोली के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय ने आकस्मिक दैनिक श्रेणी के कर्मचारियों को नियमित कर्मचारियों के समान वेतनमान दिया।

3. ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में यह महसूस किया गया कि समान काम के लिए समान वेतन के सिद्धांत को लागू करने से अराजकता पैदा हो रही है। पूरे भारत में विभिन्न समूह अन्य समूहों के साथ वेतन में समानता का दावा कर रहे थे, उदाहरण के लिए एक राज्य के सरकारी कर्मचारी दूसरे राज्य के सरकारी कर्मचारियों के साथ समानता का दावा कर रहे थे।

4. वेतनमान का निर्धारण एक नाजुक तंत्र है जिसके लिए वित्तीय

क्षमताएं, जिम्मेदारी, शैक्षणिक योग्यताएं, नियुक्ति का तरीका आदि सहित विभिन्न विचारों की आवश्यकता होती है और इसका व्यापक प्रभाव पड़ता है। इसलिए इस न्यायालय के बाद के निर्णयों में समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धांत को काफी कमजोर कर दिया गया है और हाल के वर्षों में इस न्यायालय द्वारा इसे शायद ही कभी लागू किया गया है।

5. इस प्रकार हरियाणा राज्य बनाम तिलक राज (2003)⁶ एससीसी 123 में यह माना गया कि सिद्धांत केवल तभी लागू हो सकता है जब दोनों समूहों के बीच पूर्ण और एकदम एकरूपता हो। भले ही दोनों समूहों के कर्मचारी समान कार्य कर रहे हों उन्हें पूर्ण और एकदम एकरूप न होने पर समान वेतन नहीं दिया जा सकता है उदाहरण के लिए एक दैनिक रेटेड कर्मचारी एक नियमित कर्मचारी के समान कार्य कर सकता है फिर भी उसे समान वेतन नहीं दिया जा सकता है। इसी प्रकार कर्मचारियों के दो समूह एक ही कार्य कर रहे हों, फिर भी शैक्षणिक योग्यता भिन्न होने पर उन्हें अलग-अलग वेतनमान दिया जा सकता है। साथ ही यदि नौकरियों की प्रकृति, जिम्मेदारियां, अनुभव, भर्ती की विधि आदि अलग-अलग हों तो वेतनमान भी भिन्न हो सकता है।

6. हरियाणा राज्य और अन्य बनाम चरणजीत सिंह और अन्य(2006)⁹ एससीसी 321 में पहले के कई फैसलों पर चर्चा करते हुए इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने यह माना था कि समान

काम के लिए समान वेतन का सिद्धांत लागू नहीं किया जा सकता है। तब जब तक कि दोनों समूहों के बीच पूर्ण और एकदम एकरूपता न हो जाए। इसके अलावा यहां तक कि यह पता लगाने के लिए कि क्या पूर्ण और एकदम एकरूपता है, एक उचित मंच विशेषज्ञ निकाय है न कि रिट कोर्ट क्योंकि इसके लिए व्यापक साक्ष्य की आवश्यकता होती है। समान काम के लिए समान वेतन के सिद्धांत की यांत्रिक व्याख्या बड़ी व्यावहारिक कठिनाइयाँ पैदा करती है। इसलिए हाल के फैसलों में सुप्रीम कोर्ट ने समान काम के लिए समान वेतन के सिद्धांत को काफी कमजोर कर दिया है और इस सिद्धांत को हाल के फैसलों में शायद ही कभी लागू किया गया है।

7. हरियाणा राज्य और अन्य बनाम तिलक राज और अन्य(2003)6 एससीसी 123 में सुप्रीम कोर्ट ने हरियाणा रोडवेज के दैनिक वेतनभोगियों के संदर्भ में समान काम के लिए समान वेतन के सिद्धांत पर विचार किया :

"पहले के कई फैसलों पर ध्यान देने के बाद सुप्रीम कोर्ट ने कहा वेतनमान एक निश्चित पद से जुड़ा होता है और दैनिक वेतनभोगी के मामले में उसके पास कोई पद नहीं होता है। प्रतिवादी कर्मचारियों को किसी भी या सभी उद्देश्यों के लिए नियमित और स्थायी कर्मचारियों के साथ तुलना का दावा करने के लिए समान वेतन और भत्ते के

दावे सहित किसी भी पद पर नहीं रखा जा सकता है। समानता के आधार पर राहत का दावा करने के लिए दावेदारों को दूसरे समूह के बराबर अधिकारों का दावा करने के योग्य बनने से पहले समकक्षता के स्पष्ट आधार और कथित भेदभाव की तुलना में परिणामी शत्रुतापूर्ण भेदभाव को प्रमाणित करना होगा। दोनों श्रेणियों के कर्तव्यों की प्रकृति के बारे में उच्च न्यायालय के समक्ष कोई सामग्री नहीं रखी गई थी और यह मानना संभव नहीं है कि "समान काम के लिए समान वेतन" का सिद्धांत एक अमूर्त है।"

"समान काम के लिए समान वेतन" एक ऐसी अवधारणा है जिसकी प्रयोज्यता के लिए समान वेतनमान का दावा करने वाले कर्मचारियों के एक समूह और पहले से ही ऐसे वेतनमान अर्जित कर चुके कर्मचारियों के दूसरे समूह के बीच पूर्ण और एकदम एकरूपता की आवश्यकता होती है। समान वेतन की समस्या को हमेशा गणितीय सूत्र में अनुवादित नहीं किया जा सकता है। (जोर दिया गया)

8. यूपी राज्य और अन्य बनाम मंत्रालयिक कर्मचारी संघ एआईआर (1998)एससी 303 में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि भले ही एक ही पद पर रहने वाले व्यक्ति समान कार्य कर रहे हों लेकिन यदि भर्ती, योग्यताएँ,

पदोन्नति, आदि का तरीका अलग है तो अलग-अलग वेतनमान तय करने के लिए पर्याप्त होगा। जहां दो श्रेणियों के पदों में भर्ती, योग्यता और पदोन्नति का तरीका बिल्कुल अलग है, वहां समान काम के लिए समान वेतन के सिद्धांत को लागू नहीं किया जा सकता है।

9. हरियाणा राज्य बनाम जसमेर सिंह और अन्य एआईआर (1997)एससी 1788 में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि समान काम के लिए समान वेतन के सिद्धांत को लागू करना हमेशा आसान नहीं होता है। विभिन्न संगठनों में विभिन्न व्यक्तियों के कार्यों की तुलना और मूल्यांकन करने में अंतर्निहित कठिनाइयाँ हैं। समान कार्य करने वाले व्यक्तियों की जिम्मेदारियाँ विश्वसनीयता और गोपनीयता अलग-अलग हो सकती हैं और यह वैध भेदभाव के लिए पर्याप्त होगा। पद से जुड़ी जिम्मेदारियों और एक पदधारी से अपेक्षित विश्वसनीयता की डिग्री के संबंध में प्रशासनिक अधिकारियों का निर्णय, संबंधित अधिकारियों का एक मूल्यवान निर्णय होगा जो यदि वास्तविक और तर्कसंगत रूप से आता है तो न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने के लिए उचित और तर्कसंगत रूप से खुला नहीं था।

10. फेडरेशन ऑफ ऑल इंडिया कस्टम्स एंड एक्साइज स्टेनोग्राफर्स (मान्यता प्राप्त) और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य एआईआर (1988)एससी 1291 में इस न्यायालय ने कहा:

"इस मामले में किए गए कार्य की प्रकृति और प्रकार

को ध्यान में रखते हुए यानी समझने योग्य आधार पर भेदभाव को उचित ठहराने की कोशिश की गई है। शारीरिक कार्य की समान मात्रा में कार्य की गुणवत्ता भिन्न हो सकती है कुछ अधिक संवेदनशील किसी को अधिक चतुराई की आवश्यकता होती है किसी को कम, यह कार्य की प्रकृति और संस्कृति पर निर्भर करता है। समान वेतन की समस्या को हमेशा गणितीय सूत्र में अनुवादित नहीं किया जा सकता है।"

11. यह उल्लेख किया जा सकता है कि वेतनमान देना पूरी तरह से कार्यकारी कार्य है और इसलिए न्यायालय को इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इसका व्यापक प्रभाव हो सकता है जिससे सरकार और अधिकारियों के लिए सभी प्रकार की समस्याएं पैदा हो सकती हैं। इसलिए न्यायालय को न्यायिक संयम बरतना चाहिए और इंडियन ड्रग्स एंड फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड बनाम वर्कमेन, इंडियन ड्रग्स एंड फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड मामले में ऐसे कार्यकारी कार्य में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। (2007)1 एससीसी 408।

12. संविधान के तहत शक्तियों का व्यापक पृथक्करण है और न्यायपालिका को आमतौर पर कार्यकारी या विधायी क्षेत्र में अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत जिसे सबसे पहले फ्रांसीसी

दार्शनिक मॉटेस्क्यू ने अपनी पुस्तक 'द स्पिरिट ऑफ लॉज' में प्रतिपादित किया था आज भी भारत में व्यापक रूप से लागू है। इस प्रकार आसिफ हमीद बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य एआईआर(1989)एससी 1899 में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने (पैराग्राफ 17 से 19 के माध्यम से) कहा:

"17. इन अपीलों से सीधे तौर पर जुड़े विवाद पर चर्चा करने से पहले हम अपने संविधान के तहत लोकतंत्र के तीनों अंगों की परस्पर कार्यप्रणाली पर नए सिरे से नजर डाल सकते हैं। हालांकि शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को पूर्ण कठोरता से संविधान के तहत मान्यता नहीं दी गई है, लेकिन संविधान निर्माताओं ने राज्य के विभिन्न अंगों के कार्यों को सावधानीपूर्वक परिभाषित किया है। विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका को संविधान के तहत निर्धारित अपने क्षेत्रों के भीतर कार्य करना होता है। कोई भी अंग दूसरे को सौंपे गए कार्यों को हड़प नहीं सकता है। संविधान इस पर भरोसा करता है इन अंगों को कार्य करने और अपने विवेक का प्रयोग करने के लिए निर्धारित प्रक्रिया का कड़ाई से पालन करना चाहिए। लोकतंत्र का कामकाज उसके प्रत्येक अंग की ताकत और स्वतंत्रता पर निर्भर करता है। विधायिका और कार्यपालिका लोगों की इच्छा के दो पहलू हैं उनके पास वित्त सहित सभी शक्तियां हैं। न्यायपालिका के पास तलवार या बटुए पर कोई शक्ति नहीं है फिर भी उसके पास यह सुनिश्चित करने की शक्ति है कि राज्य के उपरोक्त दो मुख्य अंग संवैधानिक सीमाओं

के भीतर कार्य करते हैं। यह लोकतंत्र का प्रहरी है न्यायिक समीक्षा विधायिका और कार्यपालिका द्वारा शक्ति के असंवैधानिक प्रयोग को रोकने के लिए एक शक्तिशाली हथियार है। न्यायिक समीक्षा के विस्तारित क्षितिज ने सामाजिक और और्थिक न्याय की अवधारणा को अपने दायरे में ले लिया है। जबकि विधायिका और कार्यपालिका द्वारा शक्तियों का प्रयोग न्यायिक संयम के अधीन है हमारी अपनी शक्ति के प्रयोग पर एकमात्र रोक न्यायिक संयम का स्वयं लगाया गया अनुशासन है।

18. ट्रॉप बनाम डलेस (1958) 356 यूएस 86 के विवादास्पद प्रवासी मामले में अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट के फ्रैंकफर्टर, जे. ने इस प्रकार असहमति व्यक्त की:

"मैडिसन के वाक्यांश में सारी शक्ति एक अतिक्रमणकारी प्रकृति की है। न्यायिक शक्तियां इस मानवीय कमजोरी से अछूती नहीं है। इसे अपनी उचित सीमा से परे अतिक्रमण के खिलाफ भी सतर्क रहना चाहिए, और कम नहीं, क्योंकि इस पर एकमात्र संयम आत्म-संयम है.....

अधिकार के प्रश्नों और विवेक के प्रश्नों के बीच शक्ति की सीमाओं और शक्ति के बुद्धिमानीपूर्ण प्रयोग के बीच अंतर का कठोरता से पालन करने के लिए दो अवधारणाओं के इस निर्णायक लेकिन सूक्ष्म संबंध की सबसे सतर्क सराहना की

आवश्यकता होती है जो बहुत आसानी से एकजुट हो जाते हैं। अंतर का पालन करने के लिए किसी अनुशासित इच्छाशक्ति की भी कम आवश्यकता नहीं है। अलग-थलग खड़े रहना और मामलों के संचालन में बुद्धिमानी के बारे में अपने स्वयं के दृढ़ता से रखे गए दृष्टिकोण की उपेक्षा करना और ज्ञान की कमी को हावी होने देना आसान नहीं है। लेकिन नीति सुनाना इस न्यायालय का काम नहीं है। इसे अपनी स्वयं की शक्ति की सीमाओं का सावधानीपूर्वक ध्यान रखना चाहिए और यह न्यायालय की बुद्धिमानी या राजनीतिकता की अपनी धारणाओं को प्रभावी बनाने से रोकता है। न्यायिक शपथ के पालन में आत्म-संयम का सार है क्योंकि संविधान ने न्यायाधीशों को कांग्रेस और कार्यकारी शाखा के विवेक के आधार पर निर्णय देने के लिए अधिकृत नहीं किया है।"

19. जब किसी राज्य की कार्रवाई को चुनौती दी जाती है तो अदालत का कार्य कानून के अनुसार कार्रवाई की जांच करना और यह निर्धारित करना है कि क्या विधायिका या कार्यपालिका ने संविधान के तहत सौंपी गई शक्तियों और कार्यों के भीतर कार्य किया है और यदि नहीं तो अदालत को ऐसा करना चाहिए। कार्रवाई को रद्द करें ऐसा करते समय न्यायालय को अपनी स्वनिर्धारित सीमाओं के भीतर रहना चाहिए। अदालत सरकार

की समन्वय शाखा की कार्रवाई पर फैसला सुनाती है। प्रशासनिक कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते समय न्यायालय अपीलीय प्राधिकारी नहीं है। संविधान अदालत को नीति के मामलों में कार्यपालिका को निर्देश देने या सलाह देने या संविधान के तहत विधायिका या कार्यपालिका के क्षेत्र में आने वाले किसी भी मामले पर उपदेश देने की अनुमति नहीं देता है बशर्ते कि ये अधिकारी अपनी संवैधानिक सीमाओं या वैधानिक शक्तियों का उल्लंघन न करें।" (जोर दिया गया)

13. हमारी राय में समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धांत को लागू करके न्यायालयों द्वारा वेतनमान तय करना राज्य के तीन अंगों के बीच शक्तियों के पृथक्करण के उच्च संवैधानिक सिद्धांत को उलट देता है। इसे महसूस करते हुए इस न्यायालय ने हाल के वर्षों में समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धांत को लागू करने से परहेज किया है जब तक कि दोनों समूहों के बीच पूर्ण और एकदम एकरूपता न हो और वहां भी मामले को न्यायालय द्वारा स्वयं उच्च वेतन देने के बजाय सरकार द्वारा नियुक्त विशेषज्ञ समिति द्वारा जांच के लिए भेजा जाना चाहिए।

14. उच्चतम न्यायालय द्वारा बंगाल बनाम तरुण के. रॉय और अन्य(2004)¹ एससीसी 347 में यह अच्छी तरह से तय किया गया है कि केवल इसलिए कि कार्य की प्रकृति समान है शैक्षणिक योग्यताएं, नियुक्ति का तरीका, अनुभव और अन्य प्रासंगिक कारकों के बावजूद समान कार्य के

लिए समान वेतन का सिद्धांत लागू नहीं किया जा सकता है।

15. इसी प्रकार हरियाणा राज्य और अन्य बनाम हरियाणा सिविल सचिवालय पर्सनल स्टाफ एसोसिएशन(2002)6 एससीसी 72 में समान काम के लिए समान वेतन के सिद्धांत पर बहुत विस्तार से विचार किया गया था। उक्त फैसले के पैराग्राफ 9 और 10 में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि पदों और वेतन का समीकरण एक जटिल मामला है जिसे एक विशेषज्ञ निकाय पर छोड़ दिया जाना चाहिए। न्यायालयों को यह महसूस करना चाहिए कि यह काम कठिन और समय लेने वाला है जिसे अपेक्षित विशेषज्ञता वाले कर्मचारियों की सहायता वाले विशेषज्ञों के लिए भी करना मुश्किल हो रहा है। वेतन का निर्धारण और समता का निर्धारण एक जटिल मामला है जिसका निर्वहन कार्यपालिका को करना है। न्यायालय द्वारा वेतन समानता देने से व्यापक प्रभाव और प्रतिक्रिया हो सकती है जिसके भारत संघ और अन्य बनाम प्रदीप कुमार डे (2000)8 एससीसी 580 के तहत प्रतिकूल परिणाम हो सकते हैं।

16. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए मैं अपने विद्वान भाई माननीय ए.के.माथुर, जे. के इस निष्कर्ष से सहमत हूं कि अपीलकर्ताओं द्वारा की गई अपीलें खारिज किए जाने योग्य हैं। तदनुसार आदेश दिया गया।

(अपील खारिज)

यह अनुवाद औटिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी कनिष्का यादव (और.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।